अमेरिकी नागपाश से मुक्ति हेतु
साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चा बनाना जरूरी

शांति का नोबेल पुरस्कार पाने वाले अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने कहा कि वे गांधी और मार्टिन लूथर किंग के रास्ते पर नहीं चल सकते। सही और ईमानदारीपूर्वक बात कही ओबामा ने। वे शांति के मार्ग पर नहीं चल सकते। साम्राज्यवाद का प्रतिनिधि आखिर शांति के मार्ग पर चल भी कैसे सकता है! इससे ओबामा को शांति का नोबेल पुरस्कार देने वालों को अक्ल आ जानी चाहिए। बाघ से कोई यह उम्मीद करे कि वह अहिंसक हो जाएगा और शिकार करने की जगह शाकाहारी बन जाएगा, वैसा ही रहा ओबामा का नोबेल पुरस्कार के लायक समझना।

ओबामा ने आतंकवाद की आड़ में जो साम्राज्यवादी चाल चली है, वह किसी भी तरह से पूर्व राष्ट्रपति जार्ज बुश की नीतियों से अलग नहीं है। जार्ज बुश ने इराक, ईरान और अफगानिस्तान में जैसी नीति अपनाई थी, ओबामा उसी का विस्तार कर रहे हैं। ऐसा लग रहा है कि पश्चिम एशिया को अमेरिका बर्बाद करके ही छोड़ेगा। इराक और अफगानिस्तान में उसकी उपस्थिति घातक साबित होगी।

जब ओबामा ने राष्ट्रपति का पदभार संभाला था, उस समय उनकी बड़ी प्रशंसा हुई थी और नासमझ लोगों द्वारा यह समझा जा रहा था कि वे इराक से अमेरिकी सैनिकों को वापिस बुला लेंगे। लेकिन ओबामा ने ऐसा नहीं किया। यहां तक कि अमेरिकी जनता ने भी इराक में सैनिकों की तैनाती का विरोध किया, पर ओबामा ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। इराक गृहयुद्ध की आग में जलता रहा और अमेरिकी सैनिक भी उस आग में जलकर मरते रहे।

'आतंकवाद, आतंकवाद' का शोर मचा कर दुनिया भर को आतंकित करने वाले ओबामा के सैनिक इराक एवं अफगानिस्तान में आतंक के पर्याय हैं। ये सैनिक वहां की जनता पर हर तरह का अत्याचार कर रहे हैं, पर अमेरिका के खिलाफ कोई मानवाधिकारवादी संगठन सामने नहीं आ रहा है। आए भी क्यों, तमाम 'मानवाधिकारवादी' संगठनों को 'दाना-पानी' अमेरिका अथवा अमेरिका के प्रभुत्व वाले संयुक्त राष्ट्र संघ से ही मिलता है।

आज अमेरिका का साम्राज्यवादी स्वरूप इतना घृणित हो गया है कि वह पूरे पश्चिम एशिया के साथ-साथ दक्षिण एशिया पर भी अपने खूनी पंजों को गड़ा रहा है। पाकिस्तान को इसने अपना गुलाम बना ही लिया है, दूसरी तरफ भारत भी इसके आगे दुम हिलाने को बराबर तैयार है। भारत जैसे देश हर स्तर पर अमेरिका का समर्थन करने के लिए तैयार रहते हैं। इन्होंने अपनी नीतियों को परोक्षत: अमेरिका की गुलामी की ओर धकेल दिया है।

पिछले दिनों बराक ओबामा ने इराक और अफगानिस्तान में 35,000 सैनिकों को भेजने की बात कही। इसका अमेरिका के साथ पूरी दुनिया में विरोध हुआ। बराक ओबामा की लोकप्रियता रातोंरात घट गई। इसके साथ ही ओबामा ने पाकिस्तान को धमकाना शुरू कर दिया कि वह आतंकवादियों को पनाह नहीं दे। उन्होंने कहा कि पाकिस्तान पर ड्रोन के हमले जारी रहेंगे। अमेरिका ने पाकिस्तान पर हमलावर रुख अपना लिया जबकि पाकिस्तान घोषित रूप से अमेरिका का पिट्ठू है। बराक ओबामा ने अफगानिस्तान में अपने ही कठपुतले शासक करजई को भी धमकाना शुरू किया कि वह आतंकवादियों-तालिबान के खिलाफ कड़ा रुख अपनाए और उन्हें अफगानिस्तान की सीमा से खदेड़ दे, जबकि अमेरिका भली-भांति यह जानता है कि करजई उसी के बदौलत अफगानिस्तान में शासक बना बैठा है, यह बात अलग है कि काबुल में

"अमेरिका बाहर से जितना ताकतवर दिख रहा है, वास्तव में उतना है नहीं। इसका पता इसी बात से चलता है कि अपनी पूरी ताकत झोंक देने के बावजूद वह एक आतंकवादी ओसामा-बिन-लादेन तक को पकड़ नहीं सका। कुछ लोगों का यहां तक मानना है कि ओसामा-बिन-लादेन मर चुका है, पर उसके भूत को जिंदा रखकर अमेरिका पूरी दुनिया को आतंकित कर रहा है।"

उसके महल से बाहर उसका सिक्का नहीं चलता। उसे हर पल तालिबान से खतरा है। अमेरिकी फौज का बल उसे प्राप्त न हो तो तुरंत उसकी सत्ता मिट्टी में मिल सकती है। करजई की स्थिति कितनी कमजोर हो गई है, इसका पता इसी से चलता है कि उन्होंने समझौता-वार्ता करने के लिए तालिबान प्रमुख मुल्ला उमर को कई बार आमंत्रित किया, पर मुल्ला उमर वार्ता के लिए नहीं आया।

आज अफगानिस्तान में अमेरिकी फौज की मौजूदगी के बावजूद सिर्फ राजधानी काबुल को छोड़कर हर जगह तालिबान की सत्ता है और तालिबान की सत्ता का आधार वहां उपजायी जाने वाली अफीम है। इसके अलावा पाकिस्तान की सत्ता महज दिखावे के लिए जरदारी के हाथों में है, असली ताकत तो सेना और आईएसआई के हाथों में केंद्रित है। अमेरिका अभी कहता है कि सर्वोच्च आतंकवादी संगठन अल कायदा का प्रमुख ओसामा-बिन-लादेन पाकिस्तान में छुपा हुआ है तो कभी कहता है कि वह अफगानिस्तान में है और कभी यह भी कह देता है कि ओसामा-बिन-लादेन मारा जा चुका है। आतंकवादियों को खत्म करने के नाम पर वह पाकिस्तान-अफगानिस्तान के सीमावर्ती इलाकों पर लगातार मानवरहित वायुयानों से बमों की वर्षा कर रहा है जिसमें निरपराध लोग मारे जा रहे हैं। इन इलाकों में बिना लक्ष्य निर्धारित किए हुए धुआंधार बमबारी कर अमेरिका मानवता के खिलाफ ऐसा बर्बर व्यवहार कर रहा है जिसकी कोई मिसाल नहीं मिल सकती।

वहीं इराक में लगातार गृहयुद्ध की स्थिति बनी हुई है। अमेरिका की उपस्थिति ने वहां अराजकता की भयावह स्थिति बना दी है। लगता है, अपनी फौज के बल पर अमेरिका वहां तब तक मौजूद रहेगा, जब तक अमेरिकी कंपनियां वहां तेल की आखिरी बूंद को न सोख ले। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि अमेरिका के शासकों को यह अच्छी तरह से पता था कि इराक के पास जैविक व रासायनिक हथियार नहीं हैं, फिर भी उसने इस बहाने से इराक पर हमला किया, सद्दाम को बंदी बनाया एवं उसे फांसी की सजा दे दी। इससे स्पष्ट होता है कि अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए अमेरिका किसी भी हद तक जा सकता है।

अब अमेरिका ने ईरान को अपना निशाना बना रखा है। उसका कहना है कि ईरान चोरी-छिपे परमाणु बम बना रहा है और यह विश्वशांति के लिए खतरा है। दूसरी तरफ, ईरान कह रहा है कि वह उर्जा संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए परमाणु शक्ति का विकास कर रहा है। ईरान पर इस बहाने कई तरह के प्रतिबंध अमेरिका ने पहले से लगा रखे हैं और अब भी लगाने की धमकी देता है। अंतरराष्ट्रीय परमाणु उर्जा आयोग में ईरान के खिलाफ मत दिलवाता है। अंतरराष्ट्रीय परमाणु उर्जा आयोग अमेरिका के हाथों का खिलौना है। अमेरिका के कहने पर भारत ने पहले भी ईरान के खिलाफ मत दिया और भारी किरकिरी होने के बाद भी हाल-फ़िलहाल ईरान के खिलाफ़ मत देकर गलती दोहराई। इससे भारतीय शासक वर्ग का चरित्र भी स्पष्ट हो जाता है। जहां तक ईरान का सवाल है, वह एक संप्रभु राष्ट्र है और उसे परमाणु शक्ति विकसित करने का पूरा अधिकार है। ईरान अगर परमाणु बम बनाता भी है तो इसके लिए पूर्ण स्वतंत्र है। अमेरिका को उसे रोकने का कोई अधिकार नहीं है। भारी विरोध और प्रतिबंधों के बावजूद उत्तर कोरिया ने परमाणु विस्फोट कर दिए तो भला ईरान ऐसा क्यों नहीं कर सकता?

दूसरी बात, परमाणु बम अगर विश्वशांति के लिए खतरा है तो सबसे ज्यादा परमाणु बम अमेरिका के पास ही हैं। इसलिए विश्व शांति के लिए सबसे बड़ा खतरा अमेरिका ही हुआ। इस बात को अगर विकासशील राष्ट्रों ने नहीं समझा तो उनकी खैर नहीं। वे धीरे-धीरे अमेरिका के नागपाश में फंसते चले जाएंगे और अंतिम हद तक चूस एवं निचोड़ लिए जाएंगे। गरीब और विकासशील देशों की भलाई इसी में है कि वे अपने हितों की रक्षा के लिए आपस में मिलजुल कर संगठित हों और अमेरिका विरोधी मोर्चा बनाएं।

अमेरिका बाहर से जितना ताकतवर दिख रहा है, वास्तव में उतना है नहीं। इसका पता इसी बात से चलता है कि अपनी पूरी ताकत झोंक देने के बावजूद वह एक आतंकवादी ओसामा-बिन-लादेन तक को पकड़ नहीं सका। कुछ लोगों का यहां तक मानना है कि ओसामा-बिन-लादेन मर चुका है, पर उसके भूत को जिंदा रखकर अमेरिका पूरी दुनिया को आतंकित कर रहा है।

□ मनोज कुमार झा

ममता बनर्जी, कांग्रेस और वामपंथी

ममता बनर्जी का केन्द्र में प्रभाव बढ़ने से कांग्रेस शशोपंज में पड़ी है। बहुत मुश्किल से राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन से इसका मोहभंग करवाया। वैसे सिंगूर और नंदीग्राम प्रकरण से ही भाजपा से ममता का मोहभंग हो गया था। उस दौरान कांग्रेस ने जो चाल चली थी, उसी से तय हो गया था कि दीदी जी कांग्रेस के अलावा और कहीं नहीं जा सकतीं। भाजपा नेतृत्व तो टाटा और सालिम ग्रुप को स्वयं शासित राज्यों में ले जाना चाहती थी। सालिम ग्रुप का तो बोरिया-बिस्तर बंध गया। रह गए टाटा तो वे उत्तराखंड चले गए लखटकिया कार बनाने।

लेकिन भूलना नहीं होगा कि जो किसान ममता बनर्जी के नेतृत्व में सिंगूर और नंदीग्राम का विरोध कर रहे थे, उसके पीछे नक्सलवादियों की ताकत खड़ी थी। ममता बनर्जी तो अपना उल्लू सीधा होने पर केन्द्र में रेलमंत्री बन बैठीं और राजसुख भोगने लगीं, पर नक्सली जनता को भड़काने में लगे रहे। उन्होंने पीठ नहीं दिखाई। नक्सलियों को तो चुनाव लड़ना नहीं है और न मंत्री बनना है। उन्हें तो वर्तमान व्यवस्था को नंगा करना है जो यह व्यवस्था अपने आप रोज-ब-रोज हो रही है।

बहरहाल, ममता बनर्जी केन्द्र में होते हुए भी पश्चिम बंगाल में अपना खेल खेल रही है। कांग्रेस भी अपना खेल खेल रही है। अगर यह कहा जाए कि दोनों मिल कर खेल खेल रहे हैं तो गलत नहीं होगा। पश्चिम बंगाल में दो वर्ष के बाद चुनाव हैं। उस चुनाव को देखते हुए सारी रणनीति बनाई जा रही है।

वामपंथी अब नगर परिषदों के चुनावों में मुंह की खा चुके हैं। सिंगूर और नंदीग्राम प्रकरण को लेकर बुद्धिजीवियों के साथ-साथ सामान्य जन में भी उनकी लोकप्रियता घटी है। वामपंथ के नाम पर इन्होंने तीस वर्षों से भी अधिक समय तक जनता को बरगलाए रखा है, पर काम धेले का भी नहीं किया। यही कारण है कि पश्चिम बंगाल पिछड़े राज्यों में शुमार होता है। यह विकसित राज्यों-हरियाणा, पंजाब एवं दक्षिण के राज्यों की बराबरी नहीं कर सकता। भीतर से यह राज्य बहुत ही कमजोर हो गया है। तीस बरसों से वामपंथियों के शासन में रहते-रहते जनता भी एकरसता महसूस करने लगी है। वह बदलाव चाहती है। बदलाव के लिए ममता बनर्जी सामने हैं। इनके साथ पीछे-पीछे कांग्रेसी भी हैं।

वामपंथियों की राज्य में और पूरे देश में जो हालत है, उसे देखते हुए ममता बनर्जी की पार्टी तृणमूल कांग्रेस का कांग्रेस के सहयोग से सत्ता पर कब्जा जमा लेना कठिन नहीं होगा। तब तक कांग्रेस ने ममता

"वामपंथी इस बात को केन्द्र सरकार से कह रहे हैं कि लालगढ़ के नक्सलियों और तृणमूल कांग्रेस में सांठगांठ है। यह एक बेसिर-पैर की बात है। लालगढ़ के नक्सली ममता बनर्जी का वर्ग चरित्र समझने में गलती नहीं कर सकते। वैसे यह एक अलग बात है कि वामपंथियों का राज पलटने के लिए उन्होंने अस्थाई तौर पर ममता का साथ देने का निर्णय लिया हो।"

को रेल मंत्रालय देकर संतुष्ट कर ही रखा है। ममता बनर्जी का एकमात्र लक्ष्य है पश्चिम बंगाल का मुख्यमंत्री बनना और कांग्रेस का उद्देश्य है - वाममोर्चा को शासन से हटाना। कांग्रेस बस वाममोर्चा के शासन से हटने से ही संतुष्ट हो जाएगी। पश्चिम बंगाल से पैर उखड़ जाने के बाद वामपंथी कहीं के नहीं रहेंगे। राष्ट्रीय राजनीति में इनकी उछल-कूद पर भी लगाम लगेगी। केन्द्र की राजनीति में वामपंथी जो उछल-कूद मचाते थे, वह पश्चिम बंगाल के बल पर। यही उनका आधार था। जब आधार ही नहीं रहेगा तो ये तमाशा दिखाएंगे कहां पर?

वैसे भी पश्चिम बंगाल में 'लालगढ़' ने वामपंथियों को उनकी औकात बता दी है। लगभग 100 गांवों के इस समूह में पश्चिम बंगाल की सरकारी मशीनरी फेल हो चुकी है। सामान्य पुलिस क्या, केन्द्र द्वारा भेजे गए अर्द्धसैनिक बल भी वहां जाने के नाम पर कांप उठते हैं। कहा जा रहा है कि लालगढ़ एक 'लिबरेटेड ज़ोन' यानी मुक्त क्षेत्र बन गया है। अब लालगढ़ में माकपाइयों का लाल आतंक नहीं चलता। लालगढ़ के आदिवासी जाग चुके हैं और अब उनका कोई शोषण करे, उसे ये बर्दाश्त नहीं कर सकते। लालगढ़ से जब-तब माकपाइयों और नक्सलियों के हथियारबंद संघर्ष की खबरें आती हैं। इतना निश्चित है कि पश्चिम बंगाल में ममता बनर्जी अगर सरकार पर कब्जा करती हैं, भले ही कांग्रेस के साथ अथवा कांग्रेस को अलग-थलग कर, उन्हें लालगढ़ की चुनौती का सामना करना ही पड़ेगा। क्या ममता बनर्जी लालगढ़ की चुनौती का सामना कर पाएंगी? करेंगी तो कैसे? वे बुद्धदेव भट्टाचार्य की तरह ही शुतुरमुर्ग की तरह रेत में सिर छुपा लेंगी?

ममता बनर्जी इस बात को भली-भांति जानती होंगी कि राज्य में वाममोर्चा शासन की कमजोर और मजबूत कड़ियां कौन-सी हैं? जहां तक कांग्रेस का सवाल है, ममता बनर्जी उस पर आंख मूंद कर विश्वास नहीं कर सकतीं। कांग्रेस ने अवसरवादी नीति के तहत तृणमूल कांग्रेस का हाथ पकड़ा है। वह कब उसे झटका दे देगी, कहना मुश्किल है।

जहां तक वामपंथियों का सवाल है, आने वाले चुनाव से वे अभी ही भयग्रस्त हैं। लोकसभा चुनाव में उनकी बिगड़ी हुई हालत ने उन्हें कुछ बोलने के काबिल नहीं रखा है। राष्ट्रीय राजनीति में वे पूरी तरह से अलग-थलग पड़ चुके हैं।

दूसरी तरफ, ममता बनर्जी रेलमंत्री पद हथिया कर शेरनी बनी हुई है। भूला नहीं जा सकता कि पश्चिम बंगाल ही वह राज्य है जहां गरीबों और भूख से व्याकुल लोगों ने सरकारी राशन की दुकानों पर हमला बोल दिया था। यानी इस कदर बदहाली वहां है कि जनता अब कुछ भी कर गुजरने पर उतारू है। यही कारण है कि नक्सली अब वहां खुलकर सक्रिय हैं। ये सिंगूर और नंदीग्राम में भी सक्रिय थे। वामपंथी इस बात को केन्द्र सरकार से कह रहे हैं कि लालगढ़ के नक्सलियों और तृणमूल कांग्रेस में सांठगांठ है। यह एक बेसिर-पैर की बात है। लालगढ़ के नक्सली ममता बनर्जी का वर्ग चरित्र समझने में गलती नहीं कर सकते। वैसे यह एक अलग बात है कि वामपंथियों का राज पलटने के लिए उन्होंने अस्थाई तौर पर ममता का साथ देने का निर्णय लिया हो।

□ प्रतिनिधि